International Journal of Applied Research 2017; 3(11): 532-536

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(11): 532-536
www.allresearchjournal.com
Received: 16-09-2017
Accepted: 23-10-2017

डॉ. अंजना रानी
एसोसिएट प्रोफेसर,
दर्शनशास्त्र विभाग, श्री गोविंद गुरु राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अंजना रानी
एसोसिएट प्रोफेसर,
दर्शनशास्त्र विभाग, श्री गोविंद गुरु राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

आत्मा के संदर्भ में भारतीय दृष्टि

डॉ. अंजना रानी

सारांश
भौतिकता की अति ने आध्यात्मिकता को आज महत्वपूर्ण बना दिया है। संसार जितना पदार्थ के मामले में समृद्ध हुआ है, आत्मा के संबंध में उतना ही दरिद्र हो गया है। बड़े पदों पर बैठे हुए बड़े लोगों द्वारा किए जा रहे भ्रष्टाचार को देख-सुनकर ऐसा लगता है कि उनमें आत्मा ही नहीं हैं। इस आत्मा के संबंध में प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में बड़ा गूढ़-गंभीर चिंतन किया गया हैं, जिनके परिचय से व्यक्तित्व रूपांतरित होता है। अतः इस शोध लेख में आत्म-विषयक जितनी भी दृष्टियां भारतीय दर्शन में विद्यमान रही हैं, उनका संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया गया है। यह आत्मचिंतन आत्मपरिचय का भी प्रारंभ हो सकता है।

कूट शब्दः अध्यात्म, जीव, पुरुष, कूटस्थ, नित्य, अनित्य

प्रस्तावना
विश्व के अनेक दर्शनों में भारतीय दर्शन आत्मा की अवधारणा को लेकर सबसे अनोखा और अद्‌भुत दर्शन है। सामान्य रूप से मनुष्य जो देखता है, जो सुनता है, जिसका स्पर्श करता है और जिसको सूंघता है अर्थात् जो विभिन्न इंद्रियों के अनुभव में आता है, उसे ही सत्य मान लेता है। लेकिन भारतीय दर्शन ने सबसे ज्यादा महत्त्व उस तत्त्व को दिया है जो इंद्रियातीत है। अध्यात्मप्रधान भारतीय दर्शन आज विज्ञान के युग में और भी ज्यादा अन्वेषण और आकर्षण का विषय बन गया है। विज्ञान ने सोचा था कि पदार्थ ही सब कुछ है, किंतु जैसे-जैसे खोज आगे बढ़ रही है, वैसे-वैसे भारतीय मनीषियों की यह धारणा कि परमात्मा ही सब कुछ है, आज महत्वपूर्ण होता जा रहा है। 'आखिर विश्व का मूल तत्व कौन सा है- जड़ या चेतन?', "वह मूल तत्व एक है या अनेक?"; -ऐसे प्रश्न विश्व के सभी चिंतकों को और दार्शनिकों को उद्वेलित करते रहे हैं। लेकिन भारतीय दर्शन का सबसे मूल प्रश्न यह है कि "मैं कौन हूं?"(को अहम्?).

बाहर की खोज करते-करते वैज्ञानिकों को पता चला कि पदार्थ जैसा दिखाई देता है, वैसा ही नहीं है; इसी प्रकार अंदर की खोज करते करते धार्मिकों को भी यह पता चला कि दिखाई पड़ने वाला तन वह नहीं है, वह मन भी नहीं है; वह तो आत्म-स्वरूप है।

'मैं कौन हूं' प्रश्न का उत्तर 'मैं ब्रह्म हूं' के रूप में साधकों को पता चला।

विज्ञान के आविष्कार सर्वसामान्य के लिए सुलभ हो जाते हैं और सर्वसामान्य उसका उपयोग करने लगता है, लेकिन धर्म का आविष्कार नितांत व्यक्तिगत साधना से फलित होता है और उपलब्ध होता है। अतः आज के भौतिकतावादी युग में अध्यात्मवादी चर्चा तो खूब चलती है किंतु आत्मा चर्चा का विषय नहीं है बल्कि अनुभव का विषय है। जिन मनीषियों को आत्मा का अनुभव हुआ, उन्होंने उस अनुभव को अपने-अपने शब्दों में अभिव्यक्त किया। इसीलिए "एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति" महावाक्यों में प्रमुख बन गया।

भारतीय दर्शन के आदि-ग्रंथ वेद से लेकर अर्वाचीन ग्रंथों तक में आत्मा पर विचार चलता है। अनुभव में प्रकट हुई आत्मा को जब शब्द में ढाला जाता है तो वह अपने मूल रूप में नहीं रहती, फिर जब उसे सुना जाता है या पढ़ा जाता है तो लोग अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार सभी अपना-अपना अर्थ निकाल लेते हैं।

वैदिक ग्रंथों में आत्मा का निरूपण

ऋग्वेद में उस एक परम तत्व को "अभय-ज्योति" के रूप में निरूपित किया गया है।[1]

इस अद्वैतवादी विचारधारा में आत्मा और ब्रह्म का तादात्म्य स्थापित किया गया है। अथर्ववेद में कहा गया है-

'तमेव विद्वान न विभायमृत्योरात्मानं धीरमजरं, युवानम्'[2]

अर्थात् इस जगत का आत्मा निष्काम, आत्मनिर्भर, अमर, स्वयंसिद्ध, आनंदमय, सर्वश्रेष्ठ, सदैव युवा और शाश्वत है। उसके ज्ञान से ही मृत्यु को जीता जा सकता है।

निरुक्त में कहा गया है कि एक ईश्वर के रूप में जो परम सत्ता है, वही विश्वात्मा है और समस्त देवगण उस विश्वात्मा के शरीर के अंग हैं-

'एको स्यात्मनोन्ये देवा: प्रत्यंगानी भवन्ति।'[3]

वेदों का यही अद्वैतवाद उपनिषद,गीता तथा वेदांत का मूल आधार बना।

उपनिषदों में आत्मा

उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म का ऐक्य विशद और स्पष्ट रूप में उभरकर आता है-

'अयम् आत्मा ब्रह्म'[4],

'अहम् ब्रह्मास्मि'[5],

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'[6] .

विभिन्न उपनिषदों में उस एक परम तत्व को ब्रह्म, आत्मा, सत् आदि अनेक रूपों में वर्णित किया गया है-

'आत्मा एव इदं सर्वं'[7] अर्थात् यह सब कुछ आत्मा ही है।

प्रारंभ में आत्मा मात्र था-

'आत्मा एव इदम् अग्रे आसीत्'[8]

अतः उपनिषद मानता है कि आत्मज्ञान ही सर्वोच्च ज्ञान या पराविद्या है, आत्मा को जान लेने से सब कुछ ज्ञात हो जाता है-

'आत्मनि खलु अरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाने इदं सर्वं विदितम्'[9]

काम, क्रोध इत्यादि वृत्तियों का दमन करके श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। मांडूक्य उपनिषद में आत्मा की 4 अवस्थाओं का वर्णन है-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। जाग्रत अवस्था में आत्मा बाह्य वस्तुओं का अनुभव करता है, स्वप्नावस्था में मानसिक जगत का तथा सुषुप्ति अवस्था में सारे विषयों का लोप हो जाता है। ये तीनों आत्मा की अपर अवस्थाएं हैं जिन्हें क्रमश: विश्व, तैजस तथा प्राज्ञ कहते हैं। यह आत्मा का आंशिक ज्ञान है। तुरीयावस्था में आत्मा का पूर्ण ज्ञान होता है।

वैयक्तिक आत्मा अर्थात् जीवात्मा और परम आत्मा में भेद किया गया है। आत्मा का सूक्ष्म विश्लेषण कर उपनिषदों में कहा गया है कि तन, मन, प्राण, बुद्धि यह सब परिवर्तनशील बाह्य रूप आत्मा के वास्तविक रूप नहीं है, यद्यपि इन सबका मूल आधार आत्मतत्त्व ही है। जीव अज्ञानवश सुख-दुख के बंधनों से ग्रस्त है। आत्मज्ञान होने पर द्वैत नष्ट हो जाता है क्योंकि आत्मा

एक ही है। आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप है।आत्मा और परमात्मा एक ही है।
आत्मा पूर्ण है और ब्रह्म भी पूर्ण है। ब्रह्म की पूर्णता से आत्मा की पूर्णता निकालने पर जो कुछ बचता है, वह भी पूर्ण ही है-

पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।[10]

गीता में आत्म दर्शन

गीता में आत्मा को अजन्मा, सनातन और पुरातन बताया गया है जो शरीर के नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होता-

अजो नित्य: शाश्वतोअयंपुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[11]

जैसे पुराने वस्त्रों को त्याग कर मनुष्य दूसरे नए वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को त्याग कर दूसरे नए शरीर को ग्रहण करती है-

'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरो अपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।'[12]

शस्त्र इसे काट नहीं सकते, आग इसे जला नहीं सकती जल इसे गिला नहीं कर सकता और वायु इस आत्मा को सुखा नहीं सकती -

"नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावक:
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत:।"[13]

यह आत्मा अव्यक्त, अचिंत्य और विकार रहित है। गुणातीत होने के कारण वह सुख-दुख से परे केवल तटस्थ द्रष्टा मात्र है। निर्गुण होने के कारण वह देह के गुणों से लिप्त नहीं होता।[14] जिस प्रकार एक ही सूर्य संपूर्ण ब्रह्मांड को प्रकाशित करता है उसी प्रकार आत्मा संपूर्ण शरीर को प्रकाशित करता है।[15] जीव परमेश्वर का सनातन अंश है-"ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:"[16]

चार्वाक दर्शन में आत्मा

चार्वाक के अनुसार शरीर से अलग किसी अपरिवर्तनीय अमर आत्मा का अस्तित्व नहीं है। चेतना विशिष्ट शरीर को ही आत्मा मान लिया जाता है। चेतना की उत्पत्ति पृथ्वी, जल, अग्नि वायु इन चार जड़ तत्वों के सम्मिश्रण का ही परिणाम है। जिस प्रकार पान, सुपारी, चूने और कत्थे के संयोग से लाल रंग की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार अचेतन शरीर से चेतनता की उत्पत्ति होती है। चार्वाक दर्शन प्रत्यक्ष को ही एकमात्र प्रमाण मानता है,अतः आत्मा का प्रत्यक्ष नहीं होने के कारण उसे जड़ पदार्थ की ही उत्पत्ति मानता है । कुछ चार्वाक देह को आत्मा मानते हैं, कुछ प्राण को, कुछ मन को और कुछ इंद्रियों को; पर सब के अनुसार शरीर के नाश हो जाने पर आत्मा नाम का कोई तत्व शेष नहीं रहता।

जैन दर्शन में आत्मा

जैन दर्शन चेतन द्रव्य को जीव या आत्मा कहता है। जीव में चेतनता हमेशा पाई जाती है, यद्यपि चेतनता की मात्रा में अंतर हो सकता है। कैवल्य प्राप्त जीव पूर्ण चेतन होते हैं और पौधों में न्यूनतम चेतना पाई जाती है।
जैन दर्शन मानता है कि आत्मा का अस्तित्व प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकारों से प्रमाणित होता है। 'मैं सुखी हूं' इसका प्रत्यक्ष ज्ञान मुझे होता है और आत्मा के बिना शरीर के बारे में सोचना असंभव है, इस परोक्ष ज्ञान के द्वारा भी आत्मा का अस्तित्व पता चलता है।
आत्मा की शुद्धा-अवस्था अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनंद और अनंत सामर्थ्य है, पर पुद्गल से संबंधित होकर वह जीव कहलाता है। जीव संसारी है जबकि आत्मा स्वयं प्रकाश्य है और अन्य वस्तुओं को भी प्रकाशित करता है।

बौद्ध दर्शन में आत्मा

बौद्ध दर्शन सब कुछ क्षणिक, परिवर्तनशील और अनित्य मानता है, जबकि आत्मा को स्थायी और नित्य माना गया है। अतः बौद्ध दर्शन अनात्मवादी दर्शन है। आत्मा के संबंध में पूछे जाने पर बुद्ध मौन हो जाते थे। बौद्ध दर्शन

के अनुसार आत्मा चेतना का प्रवाह है, जैसे नदी के विभिन्न जल कण निरंतर प्रवाह में एक धारा का आभास देते हैं, उसी प्रकार से मानसिक विचारों, प्रत्यक्षों और भावनाओं के समूह के निरंतर प्रवाह में स्थायी आत्मा का आभास होता है।

न्याय दर्शन में आत्मा

न्याय दर्शन मानता है कि आत्मा निरवयव और विभु है तथा काल और दिक् से परे है। चेतनता आत्मा का आगंतुक गुण है, स्वरूप लक्षण नहीं। जब आत्मा का मन के साथ,मन का इंद्रियों के साथ तथा इंद्रियों का बाह्य वस्तुओं से संपर्क होता है तब आत्मा में चेतनता का संचार होता है। आत्मा ज्ञान, इच्छा आदि गुणों का आधार है तथा प्रतिसंधान, स्मरण, प्रत्यभिज्ञान करने वाला आत्मा ही है। न्याय दर्शन आत्मा के दो भेद मानता है -जीवात्मा और परमात्मा।फिर जीवात्मा के भी दो भेद मानता है- स्वात्मा और परात्मा। शब्द और अनुमान के द्वारा आत्मा और परमात्मा का अस्तित्व प्रमाणित किया जा सकता है। कुछ प्राचीन नैयायिकों के अनुसार आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं होती पर नव्य नैयायिकों का कहना है कि मानस प्रत्यक्ष के द्वारा आत्मा का साक्षात ज्ञान होता है।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार आत्मा

वैशेषिक दर्शन न्याय के सदृश वस्तुवादी दर्शन है, अतः आत्मा संबंधी विचार भी वैशेषिकों के नैयायिकों के समान ही है। सिर्फ आत्मा के मानस प्रत्यक्ष के संबंध में वैशेषिकों के बीच मतभेद है। कणाद और प्रशस्तपाद आत्मा का मानस प्रत्यक्ष नहीं मानते पर शंकर मिश्र आत्मा का मानस प्रत्यक्ष मानते हैं।

सांख्य दर्शन में आत्मा

सांख्य दर्शन दो मौलिक तत्व मानता है- प्रकृति और पुरुष अर्थात् आत्मा। वह आत्मा स्वयं प्रकाश है, शरीर, मन, इंद्रियों और बुद्धि से भिन्न है, नित्य, मुक्त, शुद्ध, बुद्ध है। पुरुष चेतन होते हुए भी निष्क्रिय है, ज्ञाता है पर ज्ञान का विषय नहीं बनता केवल साक्षी चैतन्य है। वह अपरिणामी सर्वव्यापी, सनातन, निस्त्रैगुण्य है। सांख्य पुरुष को आनंद स्वरूप नहीं मानता।

योग दर्शन में आत्मा

सांख्य के सदृश योग मानता है कि जीव स्वतंत्र पुरुष या आत्मा है, स्वभावत: शुद्ध चैतन्य स्वरूप है। जब आत्मा का स्थूल और सूक्ष्म शरीर से संबंध होता है तो अज्ञानवश जीवात्मा विकारों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इसीलिए सुख-दुख का अनुभव करता है। यही आत्मा का बंधन है। चित्तवृत्ति का निरोध होते ही आत्मज्ञान होने पर नित्य, मुक्त, शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा का साक्षात्कार होता है जो जीवन की पूर्णता है।

मीमांसा दर्शन के अनुसार आत्मा

मीमांसा दर्शन अनेकवाद में विश्वास करता है, जितने जीव हैं,उतनी आत्माएं मानता हैं। आत्मा अमर है,चैतन्य आत्मा का स्वरूप गुण नहीं है वरन् औपाधिक गुण है। जब शरीर तथा विषयों का आत्मा के साथ संयोग होता है तो चैतन्य की उत्पत्ति होती है। आत्मा कर्त्ता भी हैं और भोक्ता भी। ज्ञात सुख-दुख आदि गुण आत्मा में समवाय संबंध से रहते हैं।

वेदांत में आत्मा

अद्वैत वेदांत के प्रतिपादक शंकराचार्य के अनुसार इंद्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार और शरीर की उपाधियों से घिरा हुआ और पृथक किया गया आत्मा ही जीव है। जिस प्रकार अज्ञानता के कारण रस्सी में सर्प की प्रतीति होती है और रस्सी का ज्ञान हो जाने पर सर्प तिरोहित हो जाता है। उसी प्रकार माया के प्रभाव से ब्रह्म का वास्तविक रूप (निर्गुण ब्रह्म) छिप जाता है और जगत तथा जीव सत्य प्रतीत होने लगता है। वे केवल आभास मात्र हैं, आत्मज्ञान होते ही जीव मुक्त हो जाता है। मोक्ष का अर्थ ब्रह्म और आत्मा की एकता का ज्ञान है-" ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः"अर्थात ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है और आत्मा ब्रह्म का ही रूप है। "तत्त्वमसि"[17] महावाक्य में त्वम् (जीव) तत् (ब्रह्म) है अर्थात् ब्रह्म और जीव एक है। 'त्वम्' का अर्थ अल्पज्ञ चेतन जीव और 'तत्' का अर्थ सर्वज्ञ चेतन ब्रह्म, दोनों शुद्ध चैतन्य हैं। पारमार्थिक दृष्टि से एकमात्र ब्रह्म सत्य है और आत्मा ब्रह्म ही है।

अद्वैतवादी शंकर आत्मा को विभु बतलाते हैं, पर विशिष्टाद्वैतवादी रामानुज उसे अणु मानते हैं। अद्वैत मत में जीव स्वभावत: एक है परंतु देहादि उपाधियों के

कारण वह नाना प्रतीत होता है। रामानुज के अनुसार जीव अनंत हैं और एक दूसरे से भिन्न हैं; शरीर और आत्मा दोनों ही सत्य हैं। ब्रह्म के अचित् अंश से शरीर की उत्पत्ति होती है और आत्मा नित्य चित् तत्व है। वह भी ईश्वर का अंश है। आत्मा सूक्ष्म होने से भौतिक तत्त्व में प्रविष्ट हो सकता है। चैतन्य आत्मा का गुण है जो शरीर के प्रत्येक भाग को चेतनता से भर देता है,जैसे एक छोटा दीपक संपूर्ण कोठरी को प्रकाशित कर देता है। जीव और ब्रह्म में अंशांशिभाव संबंध है। मुक्ति का अर्थ जीवात्मा का ब्रह्म में लीन होना नहीं है। मुक्तात्मा ईश्वर का साहचर्य प्राप्त करता है, तादात्म्यीकरण नहीं।जीव और ईश्वर एक नहीं हो सकते इसीलिए ईश्वर की शरण में गए बिना जीव का कल्याण नहीं हो सकता।

भारत में आदि काल से लेकर आज तक आत्म तत्त्व का अन्वेषण जारी है। भले ही कुछ दार्शनिकों ने आत्मा के अस्तित्व का निषेध किया हो पर आत्मा ने उनके विचार मंथन को अछूता नहीं छोड़ा है। वस्तुतः साधना के द्वारा आत्म तत्त्व का अनुभव होता है,जिसे विभिन्न रूपों में अनुभव करने वालों ने व्यक्त किया है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता इसका अध्यात्म प्रधान दर्शन होना है।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद 1/164/46
2. अथर्ववेद, 10/8/44
3. निरुक्त 7/4/9
4. बृहदारण्यक उपनिषद 2/5/19
5. बृहद. 1/4 /10
6. छांदोग्य 3/14/1
7. छांदोग्य 7/25/2
8. बृहदारण्यक 1/4/1
9. बृहदारण्यक 4/5/6
10. बृहदारण्यक 11/ 3/19
11. गीता 2/20
12. गीता 2/22
13. गीता 2/23
14. गीता 3/32
15. गीता 3/33
16. गीता 15/7
17. छांदोग्य 6/8/7